संस्कृत-पाठ-माला ।

भाग बाईसवाँ ।

पाठ १

देवता-लक्षण ।

जिस मंत्रमें जिसका प्रधानतया वर्णन होता है उस मंत्र की वह देवता होती है। प्रायः मंत्रमें उस देवताका नाम होता है, परंतु किसी किसी मंत्रमें नहीं भी होता, परंतु सूक्त के किसी न किसी मंत्रमें बहुधा देवताका नाम रहता है। जैसा—

"अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋ० १।१।१

"पुरोहित, यज्ञका देव, ऋत्विज, होता, रत्नधारक अग्निकी मैं प्रशंसा करता हूं।" इसमें अग्निकी प्रशंसा होनेसे इस मंत्र की देवता अग्नि है। यह ऋग्वेदके प्रथम सूक्तका पहिला मंत्र है। इस सूक्त में नौ मंत्र हैं। केवल आठवे मंत्रमें अग्निका नाम नहीं है, शेष मंत्रोंमें है। आठवे मंत्रमें पूर्वमंत्रोंसे अग्निपद की अनुवृत्ति आती है। इसलिये इस मंत्रमें साक्षात् अग्निपद न होता हुआ भी पूर्वापरसंबंधसे इसकी देवता अग्नि है। अन्य मंत्रोंमें अग्निपद होनेसे कोई शंका नहीं हो सकती।

अग्निपद के अर्थ, आग, उष्णता गुणवाला पदार्थ, विद्वान्, ज्ञानी, जीवात्मा, परमात्मा आदि बहुत होते हैं और इस कारण इस मंत्रके अनेक अर्थ होना संभव हो सकता है, तथापि अर्थ कोई भी हो, देवता अग्निही है यह बात भूलना नहीं चाहिये। अर्थात् देवतावाचक शब्द वेदके सूक्तोंमें अवश्य होत हैं और बहुत करके मंत्रमें भी होते हैं, परंतु हरएक मंत्रमें अवश्य होता है ऐसा नियम नहीं है। जो शब्द वेदके सूक्तमें नहीं कहा है ऐसा कोई शब्द देवतावाचक नहीं है।

मंत्रोंके भेद।

वेदके मंत्रोंके तीन भेद हैं, परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिक। इनके लक्षण और उदाहरण अब देखिये—

१ परोक्षकृत मंत्र—सातों नाम विभक्तियोंमें प्रयुक्त होनेवाले देवतावाचक शब्द जिन मंत्रोंमें होते हैं उनको परोक्षकृत मंत्र कहते हैं। उदाहरण—"इन्द्र ईशे पृथिव्याः" [ऋ० १० । ८९ । १०] इन्द्र पृथ्वीका स्वामी है।

"इन्द्रं वाणीरनूषत" (ऋ. १ । ७ । १) वाणीसे बोलनेवालो! इन्द्रकी प्रशंसा करो।

"इन्द्राय साम गायत" (ऋ. ८ । ९८ । १) इन्द्रके लिये सामगान करो।

इत्यादि प्रकार सब विभक्तियों द्वारा जिन मंत्रोंमें वर्णन होता है वे मंत्र परोक्षकृत मंत्र कहलाते हैं।

२ प्रत्यक्षकृत मंत्र- "तू" इस प्रकारके शब्दप्रयोगसे देवता का वर्णन जिन मंत्रोंमें होता है वे मंत्र प्रत्यक्षकृत हैं, जैसे- "त्वमिन्द्र बलादधि" (ऋ. १०।१५३।२) हे इन्द्र! तू बलसे हुआ है।

"त्वं वृषन्वृषेदसि।" (ऋ० १०।१५३।२) हे वृष्टिकर्ता! तू वास्तवमें वर्षा करनेवाला है।

(३) आध्यात्मिक मंत्र- "मैं" इस प्रकारके शब्दप्रयोगसे जो मंत्र वर्णन करते हैं उनको आध्यात्मिक कहते हैं। जैसा—"अहं भुवं वसुनः पूर्व्यः।" (ऋ० १०।४८) मैं वसुओंके पूर्व हुआ हूं। इत्यादि मंत्र आध्यात्मिक हैं।

वेदोंमें परोक्षकृत और प्रत्यक्षकृत मंत्र अधिक हैं और आध्यात्मि थोडे हैं। पाठक इस वर्णन से जान सकते हैं कि कौनसा मंत्र परोक्षकृत है, कौनसा प्रत्यक्षकृत है और कौनसा आध्यात्मिक है।

(१) वेदमें कई मंत्र स्तुति करनेवाले होते हैं, जैसे—

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्। ऋ० १।३२

"इन्द्रके पराक्रमोंका वर्णन मैं करता हूं।" ऐसे मंत्रोंमें इन्द्रके पराक्रमोंका वर्णन होनेसे यह इन्द्रकी स्तुति, प्रशंसा या गुणवर्णन है यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है। इस ढंगसे वर्णन के मंत्र स्तुतिरूप समझने योग्य हैं।

(२) कई मंत्र वेदमें आशीर्वादरूप होते हैं अथवा प्रार्थनारूप होते हैं जिनमें अपने कल्याण होनेकी इच्छा प्रकट होती है। ऐसे मंत्र अनेक हैं और प्रसिद्ध भी हैं।

(३) कई मंत्रोंमें शपथ और कईयोंमें शाप भी होते हैं, जैसे—

"अद्यामुरीय यदि यातुधानः।"

ऋ० ७।१०४।१५

"आज ही मरूंगा यदि मैं राक्षस बनूंगा।" इन मंत्रोंका तात्पर्य भी असत्य धर्म छोडकर सत्यधर्म पालन ही है। ऐसे मंत्र बहुत थोडे ही हैं।

(४) कई मंत्रोंमें "भाव" अर्थात् सृष्टि, उत्पत्ति आदि का भी वर्णन होता है जैसे—

"तम आसीत्तमसा गूढमग्रे।"

ऋ० १० । १२९ । ३

सृष्टिके प्रारंभ में गाढ अंधकार था। इत्यादि मंत्रोंका उद्देश्य सृष्टिविषयक आदि अवस्थाका कथन करना है।

(५) कई मंत्रोंमें विलाप का भाव भी दिखाई देता है, जैसा—

"न विजानामि यदिवेदमस्मि।" ऋ० १ । १६४ । ३७

"मैं नहीं जानता (यत् इव इदं अस्मि) मैं जैसा हूं।" अर्थात् मेरी अवस्थाका मुझे पता नहीं है। आध्यात्मिक उन्नति करता हुआ मनुष्य किसी किसी समय अपने ही विषयमें शंका करता रहता है और उस समय वह अपनी पूर्ण उन्नति नहीं हुई यह देखकर विलाप भी करता है। इस भावके सूचक ये मंत्र हैं। परंतु ऐसे मंत्र थोडे हैं।

(६) कई मंत्र निंदा और प्रशंसा भी करते हैं, जैसे—

"नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी॥" ऋ० १० । ११७ । ६

"जो उत्तम मनवालेका अथवा मित्रका भी पोषण नहीं करता परंतु (केवलादी) केवल स्वयं ही खाता है वह (केवलाघः) केवल पापरूपही हो जाता है।" यह मंत्र स्वार्थी मनुष्यकी निंदा करता है। यह निंदा भी परोपकारशील मनुष्यकी स्तुति दर्शाने के लिये ही है।

इस प्रकार मंत्रोंके विभाग पाठक जाननेका यत्न करें। इस के मननसे पाठकोंका बहुत लाभ होगा। अब देवता जानने का थोडासा लक्षण स्पष्ट करते हैं—

(१) जहां यज्ञका वा यज्ञांग का वर्णन हो उनका देवता यज्ञ वा यज्ञांग समझना चाहिये।

(२) परंतु जहां यज्ञवर्णन नहीं है, वहां प्रजापति अर्थात् परमेश्वर देवता सामान्यतया समझना योग्य है।

यह मत याज्ञिकों का है। परंतु निरुक्तकारोंका मत ऐसा है कि ये मंत्र "नाराशंस" अर्थात् मनुष्योंका या मनुष्यकर्तव्योंका वर्णन करते हैं।

वेदमें एकही परमात्म देव का वर्णन अग्नि आदि अनेक नामोंसे होता है। इस लिये अग्नि, अश्व आदि विभिन्न शब्द मंत्र में देखनेसे मनमें विकल्प धारण करना नहीं चाहिये। परंतु समझना यही चाहिये कि अन्यान्य शब्दों द्वारा एक प्रभुका ही वर्णन यहां हो रहा है।

वेदके मंत्र परमात्माका वर्णन करते हुए अन्यान्य मानवी कर्तव्यों का भी उपदेश देते हैं। जैसा इंद्रके मंत्र परमात्मा का वर्णन करते हुए राजाके कर्तव्य प्रकाशित करते हैं। अग्निके मंत्र परमात्मा का वर्णन करते हुए ब्राह्मण के कर्तव्य प्रकाशित करते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओंके मंत्रोंके विषय में जानना योग्य है।

यद्यपि अग्नि,वायु आदि देवताओं के नामोंसे प्रसिद्ध अर्थ आग और हवा है अथवा यही भाव सबसे प्रथम मनमें खडा होता है तथापि वेद पढनेके समय वही भाव लेना चाहिये, यह बात नहीं है, क्यों कि वेदमें अग्निका अग्नि, वायुका वायु, प्राण का प्राण जो परमात्म देव है उसका वर्णन करते हुए अन्योंका वर्णन किया है। यदि पाठक इतनी बात मन में रखेंगे, तो उनको कोई शंका कुशंका उत्पन्न नहीं होगी और मंत्रका ठीक अर्थ ध्यानमें आ जायगा।

पाठ २

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो
यावया वधम् ॥३२॥

हे (भूमे) मातृभूमि ! (नः) हम को (मा पश्चात्) न तो पीछेसे, (मा पुरस्तात्) न आगेसे, (मा उत्तरात्) न ऊपर से, (उत) और न (अधरात्) नीचेसे (नुदिष्ठाः) हटाओ। (नः) हमारे लिये (स्वस्ति भव) कल्याणकारिणी हो। (परिपन्थिनः) बटमार, चोर अथवा दुष्ट हमको (मा विदन्) न मिलें और (वधं) मृत्युको हमसे (वरीयः) बहुत दूर (यावय) हटा दें।

हमें किसी स्थानसे प्रतिबंध न हो, हम सब दिशाओंमें प्रगति करते हुए आगे बढें, कोई भी दुष्ट शत्रु हमपर हमला न करे और किसी दुष्ट के कारण हमारा वध न हो और सब प्रकार हमारा कल्याण हो।

यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥३३॥

हे (भूमे) मातृभूमि ! (यावत्) जब तक (मेदिना सूर्येण) आनंददायी सूर्यप्रकाश से (ते) तेरा विस्तार (अभि वि पश्यामि) चारों ओर विशेष प्रकार देखूंगा, (तावत्) तब तक (उत्तरां उत्तरां समां) अगली अगली आयुमें (मे चक्षुः) मेरी चक्षु आदि इन्द्रियां (मा मेष्ट) क्षीण न हों।

सूर्यप्रकाश से मातृभूमि के विस्तार का निरीक्षण करता हुआ मैं दीर्घजीवी बनूं और आरोग्यसम्पन्न होकर अन्ततक मेरी सम्पूर्ण शक्तियां क्षीण न हों अर्थात् बढती जांय।

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम्॥३७॥

हे (पृथिवि भूमे) विस्तृत मातृभूमि! (ते ग्रीष्मः) तेरे ग्रीष्म, (वर्षाणि) वर्षा तथा शरत्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ये (ऋतवः) ऋतु (ते हायनीः) तेरे वर्षोंके संबंधी समय तथा (अहोरात्रे) दिन और रात्री अर्थात् ये सब काल (नः) हमारे लिये (दुहातां) पूर्णता अर्पण करें ।

अपनी मातृभूमि में सम्पूर्ण ऋतुओं में तथा मासों और दिनों में हमें पूर्णता प्राप्त हो ।

यस्यां सदो हविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्तें यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥३८॥

(यस्यां) जिस भूमि में (सदो-हविर्धाने) सभा और अन्न के स्थान हैं, (यस्यां) जिसमें (यूपः) यज्ञस्तंभ (निमीयते) खडा किया जाता है । (ब्रह्माणः) ज्ञानी लोग जिसमें ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद के मन्त्रों से (अर्चन्ति) ईश्वर की उपासना करते हैं और (यस्यां) जिसमें (ऋत्विजः) ऋतुके अनुसार यज्ञ करने-वाले यज्ञकर्ता लोग (इन्द्राय पातवे) इन्द्र के पान के लिये (सोमं) सोमरसका (युज्यन्ते) उपयोग करते हैं ।

हमारी मातृभूमिमें परिषद् और सत्र तथा अन्न के स्थान बहुत हैं । जहां यज्ञस्तम्भ खडा किया जाता है और जहां ऋक्, यजु और सामके मन्त्रों से ईश्वर की उपासना की जाती है और यज्ञों में जहां सोमरस का पान किया जाता है ।

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥३९॥

(यस्यां) जिस भूमि में (पूर्वे) पूर्ण (वेधसः) ज्ञानी (भूत-कृतः सप्त ऋषयः) शुभ करनेवाले सप्त ऋषि (सत्-त्रेण) सज्जनों के पालन करनेके (यज्ञेन) सत्कर्म और (तपसा) तप के (सह) साथ (गाः) गौ, वाणी और भूमि की (उत्-आनृचुः) उत्तम प्रकार से सत्कार करते आये हैं।

हमारी मातृभूमि के संपूर्ण ज्ञानी जन प्रजापालक शुभ कर्म करते और अनुष्ठान से गौ, वाणी और भूमिका सत्कार करते आये हैं।

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनु प्रयुंक्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥४०॥

(सा) वह (नः भूमिः) हमारी मातृभूमि, (यत् धनं) जो धन हम (कामयामहे) चाहते हैं, हमें (आ दिशतु) देवे।(भगः) धनवान् (अनु) पीछे से (प्रयुङ्क्ताम्) चले और (इन्द्रः) प्रमुख वीर (पुरोगवः) अग्रगामी होकर (एतु) चले।

उक्त प्रकारकी हमारी मातृभूमि हमें सब प्रकारका धन देवे वीर लोग सब से आगे चलें और धनी उनके पीछेसे चलें॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमि प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु॥४१॥

(यस्यां) जिस (भूम्यां) मातृभूमिमें (वि-ऐलबाः) विशेष प्रेरणा करनेवाले वीर (मर्त्याः) मनुष्य (गायंति) गाते हैं और (नृत्यन्ति) नृत्य करते हैं। (यस्यां) जिस में (आक्रन्दः) वीर लोग (युध्यन्ते) युद्ध करते हैं और जिसमें (दुन्दुभिः)ढोल (वदति) बजता है। (सा पृथिवी भूमिः) वह हमारी विस्तृत मातृभूमि (नः) हमारे (सपत्नान्) शत्रुओंको (प्रणुदतां)

हटा देवे और (मा) मुझे (अ-सपत्नं) शत्रुरहित (कृणोतु) करे।

जिस मातृभूमि में हम सब लोग आनंद से गाते और नाचते हैं, जिस की स्वतंत्रता के लिये हम युद्ध करते हैं और रणवाद्य बजाते हैं, वह हमारी मातृभूमि हमें शत्रुरहित करे और सब शत्रुओं को दूर भगा देवे।

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पंच कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥४२॥

(यस्यां) जिस भूमि पर (अन्नं) अन्न, (व्रीहि-यवौ) चावल और जौ होते हैं, (यस्याः) जिस पर (इमाः) ये (पंच कृष्टयः) पांच प्रकारके मनुष्य रहते हैं, उस (वर्ष-मेदसे) वर्षासे संबंध रखनेवाली (पर्जन्य-पत्न्यै) पर्जन्यसे पालन होनेवाली (भूम्यै) भूमिके लिये (नमः अस्तु) नमन हो।

जिस मातृभूमि में विविध प्रकार का अन्न, धान्य, चावल, जौ आदि विपुल होता है, वृष्टिसे जहां की खेती उत्तम प्रकार होती है और जहां ज्ञानी, शूर, व्योपारी, कारीगर और अशिक्षित लोग आनंद से रहते हैं, उस मातृभूमि की वंदना मैं करता हूं।

यस्याः पुरो देवकृतः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥४३॥

(यस्याः) जिस के (पुरः) नगर (देव-कृतः) देवता लोगों के बनाये हैं, (यस्याः) जिस के (क्षेत्रे) खेतों में मनुष्य (वि-कुर्वते) विविध कार्य करते हैं, उस (विश्वगर्भां) सब को गर्भ में धारण करनेवाली (पृथिवीं) भूमिको (प्रजापतिः) प्रजा-पालक (आशां आशां) प्रत्येक दिशामें (नः) हमारे लिये (रण्यां) रमणीय (कृणोतु) करे।

हमारी मातृभूमि में जो नगर हैं वे सब देवता लोगों के बसाये हैं, जहां सब मनुष्य विविध प्रकार के उद्योग करके अपनी उन्नति का साधन करते रहते हैं, प्रजाओंका पालन करनेवाला प्रभु हरएक दिशामें इस मातृभूमिको अत्यंत रमणीय बनावे।

क्षत्रिय वीर।

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥

ऋ० १।१९।५

(ये) जो (शुभ्राः) गौरवर्ण (घोरवर्पसः) वडे शरीरवाले (सुक्षत्रासः) उत्तम क्षत्रिय (रिश+अदसः) शत्रुका संहार करनेवाले होते हैं उन (मर-उत्‌भिः) मरने के लिये तैयार वीरोंके साथ (अग्ने) हे तेजस्वी वीर ! (आगहि) या आ।

अपने राष्ट्रमें ऐसे तेजस्वी वीर होने चाहियें कि जो वडे शरीर वाले, उत्तम क्षत्रिय, तेजःपुंज, कांतिसे युक्त और शत्रुका नाश करनेवाले होते हैं। हरएक के मन में यही इच्छा रहनी चाहिये।

पाठ ३

देवता-विभाग।

वैदिक देवताएं तीन स्थानोंमें विभक्त हैं-पृथ्वीस्थान, अंतरिक्ष स्थान और द्युस्थान। पृथ्विस्थानमें अग्नि प्रधान, अंतरिक्ष स्थानमें वायु अथवा इंद्र प्रधान और द्युस्थानमें आदित्य प्रधान है। इनके अनुगामी अन्य देव हैं।

वास्तवमें परमात्मा एक ही है और उसीका वर्णन सब देवता-नामों के द्वारा होता है, तथापि उसीकी शक्ति अग्नि, इन्द्र, सूर्य आदि देवताओं में विभक्त होनेके कारण दोनोंका वर्णन साथ-साथ चलता है, यह बात यहां स्मरण रखना चाहिये।

पृथ्वी में अग्निके साथ साथ मनुष्य, पशु, वनस्पति आदि अनेक देव हैं। अंतरिक्षमें वायु,इन्द्र,चंद्र,विद्युत्, मेघ आदि अनेक हैं। द्युस्थानमें सूर्य, नक्षत्र आदि अनेक हैं। इसका चित्र यह है—

परमात्मा

पृथ्वीलोक	अंतरिक्षलोक	द्युलोक
अग्नि	इन्द्र	सूर्य
मनुष्य	चंद्र	अश्विनी
पशु	रुद्र	
वनस्पति	विद्युत्	
	मेघ	

इस रीतिसे देवताओंका वर्गीकरण किया गया है और इस का महत्त्व बडा भारी है। पाठक इसका अवश्य स्मरण रखें। इस त्रिलोकीमें सब देव आगये हैं।

कईयोंका मत है कि ये सब देवताएं मनुष्यके समान देहधारी चेतन हैं। इस मतकी पुष्टिके लिये ये लोक ये प्रमाण देते हैं कि वेदमंत्रोंमें देवताओंके अंगों और अवयवोंका वर्णन आया है तथा देवताओंका पारस्परिक संबंधभी वर्णन किया है। जैसा एक देवका दूसरे के साथ आना तथा इन्द्रका वृत्रके साथ युद्ध आदि। इन प्रमाणोंसे इनका यह मत हुआ है कि देवताएं देहधारी और चेतन हैं।

दूसरे लोगोंका पक्ष यह है कि देवताएं पुरुष के समान देह-धारी नहीं हैं क्यों कि वेदोंमें केवल चेतनों की ही स्तुति होती है ऐसी बात नहीं है, अपितु अचेतन पदार्थों की भी स्तुती होती है। उलूखल, मुसल, रथ आदिकी स्तुति वेदमें है। देवताओंके अंगों का वर्णन है इसलिये उनको सचेतन कहना उचित नहीं है, क्यों कि रथांगोंका वर्णन भी तो वेदमें है और रथ अचेतन ही है। इस-लिये ऐसे वर्णन से वेदकी देवताएं देहधारी हैं और चेतन हैं ऐसा नहीं हो सकता।

कई कहते हैं कि देवताएं दोनों प्रकारकी हैं अर्थात् देहधारी भी हैं और देहरहित भी हैं। तथा सचेतन भी हैं और अचेतन भी हैं।

वास्तवमें देखा जाय तो संपूर्ण देवता सचेतन भी नहीं और अचेतन भी नहीं हैं। कई सचेतन हैं और कई अचेतन भी हैं। इस लिये ठीक तो यही है कि जहां जैसा वर्णन हो वहां का वर्णन देख कर निश्चय करना चाहिये कि वहां की देवता कैसी है। एकही नियम सर्वत्र समानतया नहीं लग सकता। क्योंकि किसी किसी समय एकही मंत्रमें देहधारी चेतन तथा देहरहितकाभी वर्णन हो सकता है।

इतना सामान्य विवरण होनेके पश्चात् अब देवताओंकी निरुक्ति बतायी जाती है—

अग्निः।

१ अग्र+नी=अग्+नी=अग्नि। [अग्रगामी]
२ अंग+नी=अग+नी=अग्नि। [अपने अंगके समान बनाता है।]
३ अ+क्नोप=अ+क्नु=अ+ग्नु=अग्नि। [जो स्निग्धता कम करता है

४ अयन+दग्ध+नी=अ+ग्+नी=अग्नि [गती और उष्णता पहुंचानेवाला]

पाठक ध्यानपूर्वक देखेंगे तो इन चार व्युत्पत्तियोंमें जो भेद है वह उनके ध्यान में सहजहीमें आजायगा। प्रत्येक व्युत्पत्तिमें पूर्व-पद भिन्न है और पूर्वपदका कुछ भाग अवशिष्ट रहा है, शेष भाग लुप्तप्राय होगया है। वेदके शब्दों की निरुक्ति किस प्रकार होती है यह बात विचारपूर्वक पाठक यहां देखें।

देवः।

१ दा (देना) दाता=देता=देव। [दाता]
२ दीप (प्रकाशक)=देप=देव=देव। [प्रकाशक]
३ द्युत् (चमक)=दि उत्=दिव्=देव।

पाठक यहां देखें कि यहां देव शब्द की तीन व्युत्पत्तियां बतायीं हैं, परंतु इसकी केवल इतनीही व्युत्पत्तियां नहीं है। देखिये—

४ दिव् (चमकना)=दिव्=देव (चमकनेवाला इ०)

इस दिव् धातुके अनेक अर्थ हैं। तथा अक्षरव्युत्क्रम करनेसे-

५ वेद=वे+द=देव (ज्ञानी)

यह भी व्युत्पत्ति हो सकती है। यद्यपि यह इस समय तक किसीने की नही है तथापि यह हो सकती है। इस के नियम पूर्व पुस्तकों में बताये ही हैं। आदि और अंतके अक्षर उलट पुलट होते हैं यह नियम पाठक यहां देखें।

जातवेदाः।

१ जात+वेद=बने हुओंको जो जानता है।
२ जातानि+विदुः=बने हुए इसको जानते हैं।
३ जाते+विद्यते=बने हुए पदार्थ में रहता है।
४ जात+वित्त=जिसके पास धन है अथवा जिससे धन हुआ है।

५ जात+विद्यः=जात+वेदः=जिससे वेद अथवा ज्ञान हुआ है।

"जातवेदाः" शब्द अग्निका वाचक है। इसकी ये सब व्युत्पत्तियां हैं। पाठक इनका विचार करें और देखें कि परमात्मा से लेकर अग्नि आदि अन्य देवताओं तक ठीक सजने वाले अर्थ इनसे किस प्रकार व्यक्त होते हैं।

वैश्वानरः।

१ विश्व+नर = विश्वका नर अर्थात् नेता, विश्वका। चालका

२ विश्वे नरा एनं नयन्ति=सब मनुष्य इसको प्राप्त होते हैं।

३ विश्व + न + रः = विश्वमें न रमनेवाला अर्थात् जिसका आनंद भौतिक है।

इस प्रकार इस विश्वानर या वैश्वानर शब्द के नैरुक्त अर्थ हैं। वैश्वानर अग्निदेवता के मंत्रों की देवता है अर्थात् प्रामुख्य से अग्नि ही इसका अर्थ है। परंतु प्रकरणवश इस के अर्थ अन्यान्य भी होते हैं।

तनूनपात्।

१ तनू + न + पात् = शरीरको न गिरानेवाला, अर्थात् शरीरको गिरने न देनेवाला आत्मा।

२ तनू + नपात् = (तनू) गौ का पोता, अर्थात् गौका बच्चा दूध और दूधका बच्चा घी,इसलिये गौका पोता घी। तनू का पोता।

३ तनू + ऊन + पात् = शरीरों के अंदर जो न्यूनता है उस न्यूनता को दूर करनेवाला,

तनूनपात् देवता वेदमें अनेक वार आती है। इतने निर्वचनोंसे उस देवता की योग्य कल्पना हो सकती है। पाठक ये निर्वचन मननपूर्वक ध्यानमें धारण करें।

नराशंसः।

१ नर + आशंस = मनुष्य जिसकी प्रशंसा करते हैं। मनुष्य बैठकर जिसकी स्तुति करते हैं अथवा मनुष्योंको जिसमें प्रशंसा की जाती है।

इस शब्द की यद्यपि एक ही उत्पत्ति है तथापि उसीसे अर्थकी भिन्नता इस प्रकार होती है।पाठक इस का अच्छी प्रकार मनन करें।

त्वष्टा।

१ तूर्ण+अश्नुते=तू+अश=त्वश्+तृ = त्वष्टा= त्वरा-के साथ व्यापता या फैलता है।

२ त्विष् (प्रकाशना)=त्विष्टा=त्वष्टा + प्रकाशमान।

३ त्वक्ष् (वारीक करना)=त्वक्ष्+तृ=त्वष्टा=बनाने-वाला, कारीगर

त्वष्टा शब्दका अर्थ कारीगर, सुतार लोहार आदि है। वह लकडीको ठीक बनाकर जोड देता है और आवश्यक पदार्थ बना देता है। अपनी कारीगरी से प्रकाशमान होता है, कारीगरीसे सर्वत्र फैलता है। परमेश्वर सब जगत्का बडा कारीगर है इस लिये इससे उसका बोध होता है। पश्चात् मनुष्योंमें जो कारीगर होते हैं उनका भी बोध होता है। इस प्रकार एकही शब्द से अनेक बोध होते हैं।

पाठक यहां अनुभव करें की वेदका एकही शब्द परमात्मा का वाचक होता हुआ जगत् के पदार्थोंका बोध किस प्रकार करता है। वेदके शब्द गुणबोधक होनेसे यह बात बनती है, इस विषय में अब पाठकों का निश्चय हुआ ही होगा।

पाठ ४

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥४४॥
अथर्व १२।१

अपनी (गुहा) गुहाओं में, खानों में (निधिं) निधि (बहुधा) अनेक प्रकारसे (बिभ्रती) धारण करनेवाली हमारी (पृथिवी) मातृभूमि (मे) मुझे (वसु) धन, (मणिं) रत्न और (हिरण्यं) सुवर्ण आदि (ददातु) देवे। (वसुदा) धन देनेवाली (वसूनि) धनोंको (रासमाना) देती हुई (देवी) मातृभूमि (सुमनस्य-माना) प्रसन्न-मन होकर (नः) हमारा (दधातु) धारण करे।

जिसकी खानों में विविध प्रकारके रत्न, सोना चांदी आदि धातु तथा अन्य प्रकारके विविध धन हैं, वह हमारी मातृभूमि अपना धन हमें ही देवे। अर्थात् कोई अन्य शत्रु आकर वह धन अन्यत्र न लेने पावे। जिस भूमिका धन वहीं के जनों के काम में ही आता रहे ॥

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्तीम्॥४५॥

(वि-वाचसं) अनेक प्रकारकी भाषा बोलनेवाले तथा (नाना-धर्माणं) नाना प्रकारके कर्तव्य करनेवाले (जनं) मनुष्योंको (बहुधा) अनेक प्रकारसे (यथा-ओकसम्) एकही घर में रहने के समान (बिभ्रती) धारण करनेवाली (ध्रुवा) स्थिर (पृथिवी) मातृभूमि (मे) मुझे (द्रविणस्य) धनकी (सहस्रं धाराः) सहस्र धाराएं (दुहां) दुहे, दे, जैसी (अनपस्फुरन्ती) निश्चल (धेनुः) गौ दूध की धारा देती है ॥

अनेक प्रकार की भाषायें बोलनेवाले अथवा विविध विचारों को धारण करनेवाले, तथा विविध प्रकारके विभिन्न कर्तव्य

करनेवाले मनुष्यों को एक घरके परिवार के समान जो मातृभूमि सब को समान रीतिसे धारण कर रही है वह मातृभूमि हम सब को अनेक प्रकारका धन देवे

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे। यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥४७॥

(ये) जो (ते) तेरे ऊपर (बहवः) बहुत से (पंथानः) मार्ग (जनायनाः) मनुष्यों के चलने के योग्य हैं,और जो (रथस्य) रथ के तथा (अनसः) छकडे के (यातवे) चलनेके लिये (वर्त्म) मार्ग हैं; (यैः) जिन से (उभये भद्रपापाः) दोनों भले और बुरे (संचरन्ति) चलते हैं (तं) उस (अनमित्रं) शत्रु-रहित और (अतस्करं) चोररहित (पन्थानं) मार्ग को (जयेम) हम जीतें। (यत्) जो कुछ (शिवं,) कल्याण मंगल है (तेन) उस से (नः) हमें (मृड) सुखी कर।

हमारी मातृभूमि के ऊपर आने जाने के जो मार्ग हैं, जिन पर से चलने फिरनेका हर एक को अर्थात् भले और बुरे मनुष्योंको भी समान अधिकार है, वे सब मार्ग हम सब के लिये शत्रुरहित हों और उन पर से सब लोक निर्भय होकर आते जाते रहें।

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति। उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥४९॥

हे (पृथिवि) मातृभमि ! (ये ते) वे जो (आरण्याः) वन में उत्पन्न हुये (पशवः) पशु (हिताः) हितकारी (मृगाः) हरिण आदि हैं, और (पुरुष-अदः) मनुष्यों को खानेवाले सिंह, व्याघ्र आदि (चरन्ति) घूमते हैं। (उलं) वन विलाव, (वृकं) भेडिये और (दुच्छुनां) क्रूर पशु (ऋक्षीकां) रीछनी

आदि तथा (रक्षः) घातक जीवोंको (इतः) यहां (अस्मत्) हम से (अप बाधय) दूर कर।

सब क्रूर प्राणियों को दूर और हितकारक प्राणियों को पास करके मनुष्यों को अपनी उन्नति सिद्ध करनी चाहियें।

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्चावयंश्च वृक्षान्।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥५१॥

(यां) जिस पर (द्विपादः) दो पांववाले (पक्षिणः) पक्षी हंस, (सुपर्णाः) गरुड, (शकुनाः) चिडियां, (वयांसि) कौवे कोकिल आदि (सं पतन्ति) उडते रहते हैं। (यस्यां) जिस पर (मातरि-श्वा) आकाश में चलनेवाला (वातः) वायु (रजांसि) धूली को (कृण्वन्) उडाता हुआ और (वृक्षान्) वृक्षों को (च्यावयन्) हिलाता हुआ (ईयते) चलता है। तथा (अर्चिः) प्रकाश (वातस्य) वायु के (प्रवां) गमन और (उपवां) संकोच के (अनु) अनुकूल (वाति) चलता है।

हमारी मातृभूमिपर हंस,गरुड.शकुंत आदि सब प्रकारके सुंदर पक्षी आनंद से चलते हैं, समय समय पर वायु ऐसा प्रचंड वेगसे चलता है कि जो धूलिको उडाता हुआ वृक्षों को भी उखाड देता है। प्रकाश तथा वायुका भी आनंद इस देश में विशेष है।

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि।
वर्षेण भूमिः पृथिवि वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि ॥५२॥

(यस्यां) जिस (भूम्यां) भूमि के (अधि) ऊपर (अरुणं च कृष्णं) प्रकाशयुक्त और कृष्णवर्ण अर्थात् प्रकाशरहित (अहोरात्रे)दिन और रात्री (संहिते) आपस में साथ मिले हुए (विहिते) हैं। (वर्षेण) वृष्टिसे (वृता आवृता) व्याप्त होने-

वाली (सा पृथिवी भूमिः) वह विस्तृत मातृभूमि (प्रिये धामनि धामनि) प्रत्येक रमणीय स्थान में (नः) हम सबको (भद्रया) कल्याणपूर्ण अवस्था से (दधातु) युक्त रखे।

जिस मातृभूमिपर दिन और रात योग्य प्रमाण से आते हैं, जहां उत्तम वृष्टि होकर उत्तम फल फूल होते हैं, वह भूमि हमें प्रत्येक स्थान में कल्याण देनेवाली हो।

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥५४॥

(भूम्यां) मातृभूमिपर (अहं) मैं (सहमानः) सहनशक्ति से युक्त और (नाम) यशसे (उत्-तरः) अधिक श्रेष्ठ (अस्मि) हूं। मैं (अभी-षाड्) विजयी, विश्वा-षाड्) विश्व को जितने वाला तथा (आशां आशां) प्रत्येक दिशामें (वि-सासहिः) शत्रुका पराजय करनेवाला (अस्मि) हूं।

अपनी मातृभूमि में मैं श्रेष्ठ हूं और हर एक प्रकार के विजय प्राप्त करने की शक्ति रखता हूं। अर्थात् मातृभूमि के हरएक भक्त को अपनी इतनी उन्नति करनी चाहिये कि उसका विजय सर्वत्र होता रहे। और उसके कारण मातृभूमि का नाम चारों दिशाओंमें फैले।

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद्देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ॥
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः॥५५॥

हे (देवि) भूदेवि ! (यत् पुरस्तात्) जब आगेको (देवैः) देवोंने तुझे (प्रथमाना उक्ता) विशाल मानकर तेरा वर्णन किया, और (अदः महित्वं) इस तेरे महत्व को चारों ओर (व्यसर्पः) फैलाया, (तदानीं) तब (सु-भूतं) उत्तम ऐश्वर्य (त्वा) तुझे (आविशत्) प्राप्त हुआ और तू ने (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाओं को (अकल्पयथाः) समर्थ किया ॥

ज्ञानी लोगोंने मातृभूमिका महत्व जान लिया, उसका प्रकाश किया और संपूर्ण जनता को समझा दिया। इससे चारों दिशाओंमें रहनेवाले लोग शक्तिमान हुए हैं। इसी प्रकार जो लोग मातृभूमिकी भक्ति करेंगे वे भी विलक्षण प्रभावशाली हो जांयगे।

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ॥
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदाम ते ॥५६॥

(ये ग्रामाः) जो गांव, (यत् अरण्यं) जो वन, (याः सभाः) जो सभाएं (भूम्यां अधि) भूमिपर हैं, तथा (ये संग्रामाः) जो युद्ध होते हैं, और जो (समितयः) संमेलन होते हैं, (तेषु) उन सब में (ते) तेरे विषयमें (चारु) सुंदर आदरयुक्त (वदेम) भाषण करेंगे ॥

मातृभूमिपर जो ग्राम, नगर, प्रांत, वन, अरण्य, पर्वत आदि स्थान होंगे, उन स्थानों में जो जो सभाएं, समितिएं, परिषद्, महासभाएं तथा संमेलने अथवा मेले होंगे किंवा युद्ध होंगे; उन सबमें मातृभूमिके विषयमें उत्तम आदर ही व्यक्त करना हरएक को आवश्यक है।

यद्वदामि मधुमत्तद्वदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा ॥
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान्हन्मि दोधतः ॥५८॥

(यत् वदामि) जो कुछ भी मैं बोलता हूं (तत्) वह (मधुमत् वदामि) मधुरतायुक्त ही बोलता हूं। इसलिये (यत्) जो (ईक्षे) मैं देखता हूं, (तत्) उसके अनुसार (मा वनन्ति) मुझपर वे सब लोग प्रीति करते हैं। मैं (त्विषीमान्) तेजस्वी और (जूतिमान्) वेगवान् (अस्मि) हूं और (दोधतः अन्यान्) घातक शत्रुओंको मैं (अवहन्मि) सब प्रकारसे नष्ट करता हूं।

मैं सदा मधुर भाषण करता हूं और मित्र दृष्टिसे सबको देखता हूं, इस लिये सब लोग मुझपर प्रेम करते हैं। मैने अपने अंदर

ज्ञानका तेज और कर्म का वेग बढाया है, इसलिये मैं सज्जनोंकी रक्षा और दुर्जनों का नाश करता हूं। तात्पर्य यह है कि मधुर भाषण और मित्रदृष्टिसे सर्वत्र प्रेम फैलाना चाहिये और संघ-शक्ति बढानी चाहिये। तथा हरएक मनुष्य को उचित है कि वह अपने अंदर ज्ञानका तेज और कर्मका वेग बढाकर सज्जनोंकी रक्षा करे और दुर्जनों को दूर करे॥

पाठ ५

निरुक्ति।

अश्व शब्द अश् धातुसे बना है इसलिये उसका अर्थ मार्ग को व्यापता है ऐसा होता है, यह इससे पूर्व बताया ही है। इसका उदाहरण देखिये—

अश्वो वोळ्हा सुखं रथं।
हसनामुप मंत्रिणः॥ ऋ॰ ९।११२।४

"(वोळ्हा अश्वः) रथ खींचनेवाला घोडा (सुखं रथं) सुख से खींचने योग्य हलका रथ ओढना चाहता है तथा (मंत्रिणः) प्रधान लोग या सेवा करनेवाले कार्यकर्ता लोग (हसनां) हंसना चाहते हैं।" कार्य करना नहीं चाहते। इस मंत्रमें अश्व शब्दका प्रयोग है।

सुख।

१ सु+ख=जिससे इंद्रिय उत्तम रहता है।
२ सु+हित=उत्तम रीतिसे रखा हुआ।

यह सुख शब्द ऊपर दिये मंत्रमें आगया है। सुखकारक ऐसा वहां अर्थ है।

शकुनिः ।

"शक्नोति इति शकुनिः"=जो समर्थ होता है अर्थात् उत्तम शब्द करने के लिये समर्थ होता है । अथवा उडनेमें समर्थ होता है । इसका उदाहरण यह है—

सुमङ्गलश्च शकुने भवासि । ऋ. २।४२।१

"हे शकुनि पक्षी! तूं उत्तम मंगल शब्द करनेमें समर्थ है ।"

मण्डूकः ।

१ मज्जन=मज्जूक=मण्डूक=जलमें मज्जन करता है, जलमें डुबकियां लगाता है ।
२ मदति इति मण्डूकः=जो आनंदित रहता है ।
२ मोदति इति मण्डूकः=जो खुश रहता है ।
४ मन्दति इति ,, =जो तृप्त रहता है ।
५ मण्डयति ,, ,, =जो भूषित करता है । सजाता है ।
६ मण्ड+ओकः=मण्डौकः=मण्डूकः=जल जिसका घर है ।

मण्डूक शब्दका अर्थ मेंडक है । इस शब्द की इतनी व्युत्पत्तियां हैं और इस कारण इसके विविध अर्थ होते हैं । इसका उदाहरण देखिये—

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ।
ऋ. ७।१०३।१

(संवत्सरं शशयानाः) वर्षभर पर्यंत विश्रांति लेते हुए व्रतचारी ब्राह्मण (मण्डूकाः) जो तृप्त रहते हैं वे मेघके समान तृप्ति करनेवाली वाणी बोलते हैं ।

यह मंत्र मेंडकों के वर्णन के साथ ब्राह्मणों का भी वर्णन करते हैं। मेंडक के विषयका अर्थ-"सालभर चुपचाप रहनेवाले बोलने-

वाले होकर मौन व्रत धारी के समान ये मैंडक पर्जन्य के शब्द के साथ अपना शब्द बोलने लगते हैं।"

विद्वान विषयक अर्थ-"सालभर मौनव्रत धारण की तपस्या करने के कारण व्रताचरण में रहनेवाले सदा संतुष्ट ब्राह्मण समय पर मेघके समान गंभीर वाणीसे भाषण करते हैं।"

यह मंत्र अन्योक्ति अलंकार का उत्तम उदाहरण है। मैंडकों का वर्णन करते हुए विद्वान ब्राह्मण का वर्णन यहां किया है।

रथः।

१ रंहति इति रथः=जो चलता है वह रथ होता है।

२ स्थिर = स्थि + र = थ + र = रथ। यहां अक्षर उलट पुलट होकर यह शब्द सिद्ध हुआ है। जो स्थिरताके विरुद्ध व्यवहार करता है अर्थात् गति करता है।

३ स्थि+र=स्थित+रममाण=रममाण+स्थित=र + स्थि=रथ रममाण होता हुआ जिसमें स्थिर बैठ सकता है उस का नाम रथ है। यह भी अक्षर के व्यतिक्रम का उदाहरण है।

रथ शब्द की यह व्युत्पत्तियां मनन करने योग्य हैं। किस प्रकार शब्दों के शेष रहते हैं और अक्षर उलट पुलट हो जाते हैं यह यहां देखिये।

वृषभः।

१ वर्षति इति वृषभः = जो वृष्टि करता है। वृष्टि फिर प्रजा की, बलकी या वीर्यकी भी हो सकती है।

इसका उदाहरण यह है।

न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्य आजेः।

ऋ. १०।१०२।५

(आजेः मध्ये उपयन्तः) युद्धमें गये हुए वीर लोग (एनं वृषभं न्यक्रन्दयन्) इस सांढ को शब्द करने के लिये प्रेरित करते हैं।

पितुः ।

१ पाति इति पितुः=जो रक्षण करता है।
२ पीयते इति=जो खाया जाता है।
३ प्यायति=जो वृद्धि करता है।

यह नाम अन्नवाचक है। अन्न शरीरकी रक्षा करता है, वह खाया जाता है, और वह शरीर को बढाता है ये तीनों अर्थ "पितुः" शब्द में उक्त प्रकार निरुक्ति से प्राप्त होते हैं। इसका उदाहरण देखिये—

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्।
ऋ. १।१८७।१

"अन्न की मैं प्रशंसा करता हूं जो (महः तविषीं धर्माणं) बडे बलको धारण करता है।" इत्यादि मंत्रों मेंअन्नवाचक पितु शब्द देखने योग्य है।

वायुः।

१ वाति इति वायुः=जो चलता है वह वायु है। इसका उदाहरण देखिये—

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।
तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥ ऋ. १।२।१

"हे (दर्शत) हे दर्शनीय वायो! (आयाहि) आओ ! ये सोम अलंकृत-सिद्ध किये हैं, (तेषां पाहि) उनको पान करो और (हवं श्रुधि) हमारी प्रशंसा श्रवण कर।"

यह शब्दार्थ इस मंत्रका है। वायु के अनुकूल अन्य मंत्रका भाव अन्य प्रकार भी हो सकता है।

वरुणः

१ वृणोति इति वरुणः-जो आच्छादित करता है वह वरुण कहलाता है। देखिये इसका उदाहरण—

नीचीनवारं वरुणः कबन्धं
प्रससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्। ऋ. ५।८५।३

"वरुण (नीचीनवारं) नीचे द्वारवाले (कबन्धं) मेघको द्युलोक और पृथ्वीके बीचवाले अंतरिक्षमें (प्र ससर्ज) उत्पन्न करता है।" इसमें देखिये—

१ नीचीनवारं=नीचीनद्वारं=जिसका मुख नीचेकी ओर है।
२ कबन्धं=क+बंध=उदकको बांधनेवाला अर्थात् मेघ।

पर्जन्यः।

१ तृप् धातुका आद्यन्तविपर्यय होकर "पृत्" बना और पृत्+जन्य=पृ+अन्य=पर+जन्य=पर्जन्य यह शब्द बना। जो तृप्ति करता है।

२ पर जि=पर्जन्य। दुष्काळ आदि शत्रुको जीतनेवाला।

३ पर जन्=पर्जन्य। श्रेष्ठका उत्पादक। अन्न श्रेष्ठ है उसका उत्पादक मेघही है।

४ प्र अर्ज=पर् अर्ज=पर्जन्य। विशेषतया रसोंका अर्जन अर्थात् प्राप्ति करता है। इसका उदाहरण देखिये—

यत्पर्जन्यः स्तनयन्हन्ति दुष्कृतः॥ ऋ. ५।८३।२

(यत् पर्जन्यः) जब कि यह पर्जन्य मेघ (स्तनयन्) गर्जन करता हुआ (दुष्कृतः हन्ति) पापी लोगोंका नाश करता है। अर्थात् बिजलियोंको गिराकर नाश करता है।

बृहस्पतिः ।

१ बृहत् पतिः=बृहस्पति । बडे विश्वका या ज्ञानका पालक।
२ ब्रह्मणः पतिः=ज्ञानका पालक, जलका पालक मेघ ।

इसका उदाहरण देखिये —

अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।
विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहुसाकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ।

(ब्रह्मणः पतिः) जलका पालक (य अश्मास्यः) जिस फैल-नेवाले (आवतं) नचे गये हुए (मधुधारं) मधुरजलके धर्ता मेघको (ओजसा अभ्यतृणत्) अपने सामर्थ्यसे वर्साता है (तं एव विश्वे स्वर्दृशः पपिरे) उसी जलको समस्त किरण पीकर (बहुसाकं उद्रिणं उत्सं सिसिचुः) बहुत जलवाले मेघको सहस्रगुणित करके बरसाता है ॥

"ब्रह्म" शब्दका अर्थ जलभी है और ज्ञान भी है । जल लेनेपर जलपालक मेघमंडलका वायु यह अर्थ होता है और ज्ञान अर्थ लेनेपर ज्ञानी अर्थ होता है। इस दृष्टिसे विचार करनेपर इस मंत्रमें दो अर्थ होते हैं एक मेघ वाचक और दूसरा ज्ञानीवाचक;जिस प्रकार मीठे उदककी अनेक धाराओंसे मेघ सबको तृप्त करता है उसी प्रकार ज्ञानकी धाराओंसे ज्ञानी सबको तृप्त करता है । यह भाव उक्त मंत्र में पाठक देखें । शेष अर्थ पाठक स्वयं जान सकते हैं ।

पाठ ६

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोघ्नी पयस्वती ॥
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥५९॥ अथ० १२।१

(शंतिवा) शांतिवाली, (सुरभिः) सु-गंध युक्त, (स्योना) सुखदायिनी, (कीलालोघ्नी) अन्न रस युक्त, (पयस्वती)

दूधसे युक्त, (पृथिवी भूमिः) विशाल मातृभूमि (पयसा सह) दूध और अन्न के साथ (मे) मुझे (अधि ब्रवीतु) कहे ॥

शांतिसे परिपूर्ण, आनंददायिनी तथा अन्न और पेयेंसे भरपूर हमारी मातृभूमि है वह मुझे जो आज्ञा करेगी वह मैं उसके लिये करनेको सिद्ध हूं। हरएक को उचित है कि वह अपनी मातृभूमिके लिये हरएक प्रकारका अर्पण करने को सिद्ध रहे ॥

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ॥
यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य॥६१॥

हे मातृभूमि ! (त्वं) तू (आवपनी) बडी उपजाऊ अतएव (जनानां) लोकोंको (काम-दुघा) इच्छा किये पदार्थ देनेवाली और (पप्रथाना) प्रख्यात (अदितिः) देवमाता अथवा माता देवी (असि) हो। इसलिये (यत् ते ऊनं) जो तेरे लिये न्यून होगा, (तत् ते) वह तेरे लिये (ऋतस्य प्रथमजा) सत्यका प्रथम प्रवर्तक अथवा जलका प्रेरक (प्रजा-पतिः) प्रजा पालनेवाला (आपूरयाति) पूर्ण करता है।

भूमि धान्यादि की उत्पत्ति करती है इसलिये यही इच्छित पदार्थ देनेवाली कामधेनु है। जो जो इस भूमिमें न्यून होता है उसकी पूर्ति धान्यादि बोकर उसको जल देनेवाला खाद आदि प्रबंधसे करता है। जो इस प्रकार अधिकसे अधिक धान्यकी उत्पत्ति करता है वही सच्चा प्रजापालक है। इसलिये हरएकको उचित है कि वह जलादिके उत्तम प्रबंध द्वारा भूमिसे धान्यादिकी उत्पत्ति अधिकाधिक करे और इस प्रकार प्रजापालन करता रहे ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः॥
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥६२॥

हे (पृथिवि) मातृभूमि ! (ते प्रसूताः) तेरे से उत्पन्न अत एव (उप—स्थाः) पास होनेवाले सब पदार्थ (अस्मभ्यं) हम सब के लिये (अनमीवाः) आरोग्यकारक और (अयक्ष्माः) रोगरहित (सन्तु) होवें। (नः) हमारी (आयुः) आयु दीर्घ होवे। और (वयं) हम सब (प्रतिबुध्यमाना) उत्तम ज्ञानी बनकर (तुभ्यं) तेरे लिये (बलि-हृतः) अपना बलि लानेवाले (स्याम) होवें॥

मातृभूमिमें उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थ वहां के रहनेवालों को ही मिलें और वे पदार्थ नीरोगता उत्पन्न करनेवाले, आरोग्य वढानेवाले और पुष्टि करनेवाले हों तथा दीर्घ आयु वढानेवाले हों। इस प्रकार वहां के सब लोग पुष्ट,बलवान और दीर्घायु होकर अपने सर्वस्व का बलि अपनी मातृभूमिके सामने रखने के लिये सिद्ध हों॥इस प्रकार की अवस्था जहां होगी वही देश सुखी कहने योग्य होगा।

भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्॥
सं विदाना दिवा कवे श्रियं मा धेहि भूत्याम्॥६३॥

हे (मातः भूमे) मातृभूमि ! (मा) मुझे (भद्रया) कल्याण अवस्थासे (सु प्रतिष्ठितं) युक्त (नि धेहि) रख। हे (कवे) काव्यमयी मातृभूमि! तू (दिवा) प्रकाश के साथ (सं विदाना) संबंध रखती हुई (मा) मुझे (श्रियां) संपत्ति और (भूत्यां) ऐश्वर्य में (धेहि) धारण कर॥

जो मातृभूमि के भक्त कल्याण के मार्ग से उन्नतिका साधन करते हैं वे ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित होकर संपत्ति और ऐश्वर्य से परिपूर्ण होते हैं। इसलिये हरएक मनुष्य ज्ञान विज्ञानसे युक्त होकर मातृभूमिकी भक्ति करें और स्वयंसेवक होकर मातृभूमिकी सेवा करे॥

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥१॥

अ. २-११

हे मनुष्य ! तू (दूष्याः) दूषित क्रियाका (दूषिः) नाशक (असि) है । (हेत्याः हेतिः) शस्त्रका शस्त्र तू है । (मेन्याः मेनिः) वज्रका वज्र तू है । इसलिये (समं) समानोंके (अति क्राम) आगे वढ और (श्रेयांसं आप्नुहि) कल्याणको प्राप्त कर ।

मनुष्य दोषोंको दूर करनेवाला, शत्रुके नाश करनेके विविध शस्त्रास्त्र उत्पन्न करनेवाला है । उसको उचित है, कि वह अपने समान लोगोंसेभी अपनी अवस्था का अधिक सुधार करके अत्यंत कल्याण प्राप्त करे ॥

इस जगत्में मनुष्यही दोषोंको दूर कर सत्कर्मका प्रचार करता है, शस्त्रास्त्रोंको उत्पन्नकर उनका उपयोग करता है, इसलिये उसको उचित है, कि वह अपने समान जो लोग हैं, उनसे अधिक उन्नति सिद्ध करे और अधिकाधिक कल्याण संपादन करे । और कभीभी हीन अवस्थामें न रहे, सदा आगे वढनेका यत्न करे ।

स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥२॥ अ. २।११

हे मनुष्य ! तू (स्रक्त्यः असि) प्रगतिशील है, (प्रतिसरः असि) तू आगे बढनेवाला है, (प्रत्यभिचरणः असि) तू दुष्टता-पर हमला करनेवाला है । इसलिये (समं) अपने समान लो-गोंसे (अति क्राम) आगे वढकर श्रेयको प्राप्त कर ॥

मनुष्य का स्वभाव प्रगतिशील, अभ्युदय प्राप्त करनेवाला,तथा शत्रुको दूर करनेवाला ही है। इसलिये हरएक को उचित है, कि वह अपने समान जो लोग हैं, उनसे अधिक प्रयत्न करके आगे बढें, और अधिक कल्याण प्राप्त करें ॥

हरएक बातमें स्वयं अपनी उन्नति करें, सब अन्यों की अपेक्षा अधिक आगे बढें, दुष्टताका नाश करके सत्पक्षके पक्षपाती होकर, श्रेष्ठ व्यवहार करें और अपनी उन्नति सिद्ध करें। परन्तु किसी भी अवस्थामें हीन स्थितिमें न रहें। सदा उन्नति प्राप्त करनेका परम पुरुषार्थ करें। योग्य प्रयत्नके पश्चात् यश अवश्य मिलेगा।

प्रति तमभि चर यो ३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥३॥ अ० २।११

(यः अस्मान् द्वेष्टि) जो अकेला हम सबका द्वेष करता है,इस लिये (यं वयं द्विष्मः) जिस अकेलेका हम सब द्वेष करते हैं। (तं) उसके (प्रति अभिचर) उस पर तू हमला कर। और समान जनोंके आगे बढकर अत्यंत कल्याण प्राप्त कर।

जो अकेला सब दूसरोंसे वैर करता है, इसलिये सब जनता जिसको नहीं चाहती, उस मनुष्यको दूर करना चाहिये तथा हर-एक मनुष्य प्रबल पुरुषार्थ करके आगे बढे और अपनी विशेष उन्नति सिद्ध करें।

पाठ ७

क्षेत्रम् ।

क्षेत्रं-क्षियते=जिसमें निवास किया जाता है वह क्षेत्र कहलाता है। इसके पालक का नाम "क्षेत्रपति" अथवा "क्षेत्रस्य पतिः" है; इसका उदाहरण देखिये—

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥

ऋ॰ ४।५७।१

"हम हित करनेवाले क्षेत्रके पालक की सहायतासे जय प्राप्त करते हैं। वह गौ घोडे का पोषण करके इस प्रकार हमें (मृळाति) सुख देता है।"

"वाचस्पति" वाणीका पालक होता है, इसका उदाहरण यह है—

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते निरमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥

अथर्व॰ १।१।२

"हे वाणीके स्वामी! दिव्य मन के साथ पुनः यहां आ। हे वसुपते! (निरमय) मुझे रममाण कर (मयि एव श्रुतं अस्तु) मुझमें प्राप्त किया ज्ञान स्थिर रहे।"

"यम" नियमन करनेवाले का नाम है, इसका उदाहरण यह है—

वैवस्वतं संगमनं जनानां।
यमं राजानं हविषा दुवस्यथ ॥ ऋ॰ १०।१४।१

"(वैवस्वतं) विवस्वान् से उत्पन्न (जनानां संगमनं) लोगों को संगत करनेवाले यम राजा को (हविषा दुवस्यथ) हविसे

युक्त करते हैं।"

यम अग्निका भी नाम है, इसका उदाहरण यह है—

यमो ह जातो यमो जनित्वं ।
जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥ ऋ. १।६६।४

"(जातः यमः) बने हुए पदार्थ यम हैं, (जनित्वं यमः) बननेवाले पदार्थ भी यम है यह (कनीनां) कन्याओंके कुमार आयु का (जारः) नाश करनेवाला है क्योंकि विवाहमें अग्निमें हवन किया जाता है और अग्नि के सन्मुख कन्या का पाणिग्रहण होकर उस का कन्यापन दूर होता है तथा यह (जनीनां पतिः) स्त्रियों का भी स्वामी है, क्यों कि यह आगे हवनोंके लिये सिद्ध किया जाता है और यजमानके साथ यजमानपत्नियां भी यज्ञमें बैठती हैं।" इस प्रकार इस मंत्रमें निरुक्तकारने अग्निका वर्णन बताया है।

मित्र ।

१ मि+त्र= (मान्य+त्राण) मान्य करना और रक्षा करना।
२ मिति+त्र=मृत्युसे बचाता है।
३ मि+द्र=सींचता हुआ द्रवीभूत होता है।
४ मिद्+र=स्निग्धता करता है।

ये सब मित्र के शब्दार्थ हैं इसका उदाहरण यह है—

मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे ।
मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ ऋ. ३।५९।१

"मित्र पृथ्वी और द्युलोक का धारण करता है। मित्र (कृष्टीः) मनुष्योंपर (अनिमिषा अभिचष्टे) निरंतर कृपादृष्टि करता है। इस मित्रके लिये घृतयुक्त हविष्यान्न दो।"

वेदमें "कः" देवता है। यह शब्द कमनीय अर्थात् सुखदायी, प्रिय, आनंदमय आदि अर्थ में आता है। इस का उदाहरण यह है-

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।

ऋ॰ १०।१२१।१

(अग्रे) जगत् के प्रारंभ में (हिरण्यगर्भः समवर्तत) जिस का अंतर्याम तेजस्वी है ऐसा हुआ था, जो भूतमात्रका एक पति है। उसने द्युलोक और पृथ्वीलोक को धारण किया, उस (कस्मै देवाय) कमनीय देव के लिये हम हवि अर्पण करते हैं।"

"विश्वकर्मा" शब्द "सर्वकर्मा" अर्थात् सब काम करनेवाले का भाव बताता है इसका उदाहरण यह है—

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन्पर एकमाहुः॥

ऋ॰ १०।८२।२

"(विश्वकर्मा विमनाः) विश्वका सब काम करनेवाला विशेष प्रभावयुक्त (धाता) धारणकर्ता, (विधाता) विशेष रीतिसे बनानेवाला (उत परमा संदृक्) और विशेष रीतिसे देखनेवाला (आत् विहायाः) व्यापक है। (यत्र सप्त ऋषीन् परे एकं आहुः) जहां सप्तऋषीयोंके परे एक ही है ऐसा कहते हैं वही वह है। (तेषां इष्टानि इषा संमदन्ति) उन सब के अभीष्ट इसकी इच्छासे ही परिपूर्ण होते हैं।"

अर्थात् सप्तऋषियोंके परे एकही आत्मा है जिसकी कृपासे सब को इष्ट सुख प्राप्त होता है और वही एक आत्मा धाता विधाता आदि शब्दोंद्वारा इस मंत्रमें वर्णित है।

"सविता" शब्द प्रसविता अर्थात् सबका प्रसव या उत्पत्ति करनेवाला इस अर्थमें है। इसका उदाहरण यह है—

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णात् ॥
ऋ० १० । १४९ । १

" सविताने अपने यंत्रण शक्तियोंसे पृथ्वीका नियमन किया है। "

सविता शब्दका अर्थ सूर्य भी है। यह बात प्रसिद्ध ही है।

त्वष्टा शब्दकी व्याख्या इससे पूर्व हो चुकी है उसका परमात्म-विषयक अर्थका उदाहरण यह है—

देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥
ऋ० ३ । ५५ । १९

(सविता विश्वरूपः त्वष्टा देवः) सबका उत्पादक विश्वव्यापी वस्तुमात्रका बनानेवाला देव (प्रजाः पुपोष) प्रजाओंका पोषण करता है और (पुरुधा जजान) अनेक प्रकार उत्पत्ति भी करता है। (अस्या इमा विश्वा भुवनानि) इसके ये सब भुवन हैं और (देवानां एकं महत् असु-र-त्वं) देवोंका एक ही बडा प्राणधारक तत्त्व यही है।

इसमें पाठक " सविता, त्वष्टा, देव " आदि शब्दोंके प्रयोग देख सकते हैं।

" वा " धातु गति अर्थमें है इससे "वात" शब्द बनता है इसका वायु अर्थ है। इसका उदाहरण यह है—

वात आवातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ।
ऋ० १०।१८६।१

(वातः) वायु (नः हृदे) हमारे हृदयोंके लिये (शंभु मयोभु भेषजं)शांतिकारी और आरोग्यप्रद औषध (आवातु) ले आवे। (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारे आयुष्योंको बढावे।

"वेन" शब्द कान्ति अर्थ में आता है। कान्ति का अर्थ प्रिय, प्यारा। इसका उदाहरण यह है—

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।
ऋ० १०।१२३।१

"(अयं वेनः) यह रमणीय (पृश्निगर्भाः चोदयत्) तेजस्विता का धारण करनेवालोंको प्रेरित करता है। (रजसः विमाने) रजोगुणके निर्माण समयमें(ज्योतिर्जरायुः) ज्योतिसे आवृत होता है।"

"प्रजापति" का अर्थ प्रजाओंका पालक है। इसका उदाहरण यह है—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।
ऋ० १०।१२१।१०

"हे प्रजापते! (त्वत् अन्यः) तेरे से भिन्न कोई भी (ता एतानि विश्वा जातानि न परिबभूव) इन संपूर्ण विश्वके पदार्थोंकी रक्षा नहीं कर सकता। (यत् कामाः) जिसकी इच्छा करते हुए (ते जुहुमः) तेरे अर्पण करते हैं। (तत् नः अस्तु) वह हमें प्राप्त हो (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम धनोंके स्वामी बनें।"

पाठक इस प्रकार शब्दों के अर्थ देखें, उन अर्थोंका मनन करें और उनके आशय मंत्रोंमें देखें। इस प्रकार अभ्यास करते रहने से पाठकों की प्रगति वेदके मंदिर में हो सकती है।

पाठ ८

सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥४॥
अ० २।११

हे मनुष्य ! तू (सूरिः असि) ज्ञानी है, (वर्चः-धाः असि) तू तेजस्वी है, (तनू-पानः असि) शरीरका रक्षक है, इसलिये समानों के आगे बढकर निःश्रेयस प्राप्त कर ।

मनुष्य अपना ज्ञान बढानेमें समर्थ है, वह तेजस्वी भी है, और अपने शरीरका तथा अन्योंके शरीरोंका संरक्षण करनेका सामर्थ्य रखता है । इसलिये वह ज्ञानी बने । तेजस्वी हो और अपना तथा दूसरोंका उत्तम संरक्षण करे, सब अन्योंके आगे बढकर अत्यंत कल्याण मंगल प्राप्त करे । दूसरोंका संरक्षण करने के लिये अपने आपको समर्थ करना ही अन्योंके आगे बढ जाना है । इस लिये अपनी हरएक शक्तिकी परम उन्नति सिद्ध करनी चाहिये । और अन्य जनताके संरक्षण करनेके लिये अपने आपको समर्पित करना चाहिये । इस प्रकार जो मनुष्य परोपकारके लिये आत्म-समर्पण करनेको सिद्ध होते हैं, वे सदा वंदनीय बनते हैं ।

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥५॥ अ. २।११

हे मनुष्य ! तू (शुक्रः असि) वीर्यवान् है, (भ्राजः असि) तेजस्वी है, (स्वः असि) आत्मशक्तिसे युक्त है, (ज्योतिः असि) तू स्वयं तेजरूप ही है । इसलिये (समं अतिक्राम) समानों के आगे बढकर (श्रेयांसं आप्नुहि) श्रेष्ठ कल्याण प्राप्त कर ।

मनुष्य वीर्यवान्, शूर, बलवान्, तेजस्वी, उत्साही, आत्मिक

शक्तिसे संपन्न, और स्वयं तेजकी ज्योती ही है। इसलिये वह अन्योंसे आगे बढे और अत्यंत कल्याण प्राप्त करे। और कदापि पीछे न रहे॥

मनुष्यके अंदर इतनी शक्तियां हैं, जो उन्नतिके मार्गसे प्रयत्न करने पर उन्नत हो सकती हैं। इसलिये हरएक मनुष्य इन मंत्रों के उपदेशानुसार अपने अंदर इन शक्तियोंका अस्तित्व जानकर उनको उन्नत करके श्रेष्ठ तथा आदर्श बने और कदापि अवनत अवस्थामें न रहे। मनुष्यकी उन्नतिका प्रारंभ प्राणकी शक्ति बढानेसे होता है, इसलिये अब प्राणसूक्तका विचार किया जाता है। देखिये प्राणसूक्त-

> प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
> यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥१॥
>
> अ. ११।४(६)।१

(प्राणाय नमः) प्राणके लिये नमस्कार है, (यस्य) जिस प्राणके (वशे) आधीन (इदं सर्वम्) यह सब जगत् है। (यः सर्वस्य) जो सबका (ईश्वरः भूतः) ईश्वर हुआ है और (यस्मिन्) जिसमें (सर्वं प्रतिष्ठितम्) सर्व रहा है।

प्राणशक्ति के आधीन संपूर्ण जगत् है, प्राणके आधारसे ही सब ठहरा है, प्राण ही सबका अधिकारी है, इस लिये प्राण की उपासना करनी चाहिये। जिस प्रकार शरीरमें प्राणके आधारसे सब शरीर, अंग, अवयव तथा इंद्रिय रहे हैं, उसी प्रकार विश्वके संपूर्ण पदार्थ विश्वव्यापी प्राणके आधारसे रहे हैं।

> नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे।
> नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥२॥
>
> अ० ११।४(६)।२

हे प्राण ! (क्रन्दाय ते नमः) गर्जना करनेवाले तुझे नमस्कार है। (स्तनयित्नवे ते नमः) बादलोंमें नाद करनेवाले तेरे लिये प्रणाम है। (विद्युते ते नमः) बिजलीरूप प्राणके लिये नमन है। (वर्षते ते नमः) वर्षा करनेवाले प्राणके लिये नमस्कार है।

प्राणशक्ति जो विश्वमें व्याप्त है, वह बादलोंमें भी है और वह वृष्टिद्वारा भूमिपर आती है इस लिये उस शक्तिका सत्कारपूर्वक अच्छा उपयोग करना चाहिये।

यत् प्राण स्तनयित्नुनाऽभिक्रन्दत्योषधीः।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥३॥
यत् प्राण ऋतावागतेऽभि क्रन्दत्योषधीः।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥ ४ ॥

अ० ११।४(६)।३—४

प्राण जब (स्तनयित्नुना) बादलोंकी गर्जना द्वारा (ओषधीः) औषधियोंको (अभि क्रन्दति) बुलाता है, तब वे (प्रवीयन्ते) गर्भवती होती हैं, (गर्भान् दधते) गर्भका धारण करती हैं,और (बह्वीः) बहुत होकर (वि जायन्ते) उत्पन्न होती हैं।

(यत्) जब प्राण (ऋतौ आगते) ऋतु काल आते ही (ओषधीः) ओषधियोंको (अभि क्रन्दति) बुलाता है, (तदा) तब (सर्वं प्रमोदते) सब आनंदित होता है, जो कुछ भी (भूम्यां अधि) भूमिपर है।

वृष्टिसे औषधियां तथा वृक्ष वनस्पतियां बढतीं हैं, और आनंदसे प्रसन्न होती हैं। यह अन्तरिक्षस्थ बादलमें रहनेवाले प्राण का कार्य देखने योग्य है।

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्।
पशवस्तत्प्रमोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥५॥ अ, ११।४(६)

जब प्राण (वर्षेण) वृष्टिसे (महीं पृथिवीम्) इस बडी पृथ्वी-पर (अभि अवर्षीत्) जल सींच देता है, (तत्) तब पशु (प्रमोदन्ते) आनंदित होते हैं, वे कहते हैं, कि अब (नः) हमारी (महः) वृद्धि (वै) निश्चय से (भविष्यति) होगी।

वृष्टिद्वारा जो प्राणशक्ति भूमिपर आती है, उससे पशुपक्षि-योंकी भी वृद्धि होती है, और वे आनंदित होते हैं॥

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः॥ ६॥
अ० ११।४ (६) ६

(अभिवृष्टाः ओषधयः) सींची हुई औषधियां (प्राणेन) प्राणके साथ (समवादिरन्) बोलीं, कि (नः) हमारी (आयुः) आयुको (वै) निश्चयसे तूने (प्रातीतरः) बढाया है, और (नः सर्वाः) हममेंसे सबको (सुरभीः) सुगंधित (अकः) किया है।

वृष्टिद्वारा अन्तरिक्षस्थ प्राण प्राप्त होकर सब औषधियां अपने अपने सुगन्धसे युक्त होकर जीवित रहती हैं।

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः॥ ७॥
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः
सर्वस्मै त इदं नमः॥ ८॥ अ० ११।४ (६)

हे प्राण! (आयते) आनेवाले, (परायते) जानेवाले, (तिष्ठते) स्थिर हुए, (आसीनाय) बैठनेवाले (ते) तुझे नमस्कार (अस्तु) हो॥

हे प्राण! (प्राणते) श्वास लेनेवाले (अपानते) अपान छोड-नेवाले और (पराचीनाय) बाहर जानेवाले तथा (प्रतीचीनाय)

पास आनेवाले (ते) तुझे (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो। (सर्वस्मै ते) सर्वरूप तुझे (इदं नमः) यह नमन हो।

(१)आयत्(२)तिष्ठत्,(३)परायत् और (४)आसीन ये चार नाम क्रमशः (१) पूरक (२)कुम्भक,(३) रेचक और (४) बाह्य कुंभक के हैं। श्वास और उच्छ्वासके वाचक(१)प्राणत् और (२)अपानत् ये दो शब्द हैं। प्राणकी दो गतियां हैं (१)अन्दरसे बाहिर जाना और दूसरी बाहिरसे अंदर आना,इनके सूचक शब्द उक्त मंत्रमें(१)परा॰चीन और(२)प्रतीचीन हैं। इन शब्दोंसे प्राणायाम की विधिका पता लग सकता है। इसका अनुभव करके अपने शरीरमें प्राणका महत्त्व जानना चाहिये और प्राणायामद्वारा उसको स्वाधीन करना चाहिये।

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद्भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥

अ० ११।४ (६)

हे प्राण ! (या ते प्रिया) जो तेरी प्रिय और (या उ ते प्रेयसी) जो तेरी प्रीतिकारक (तनूः) तनु है, (अथो) तथा (यत् तव भेषजं) जो तेरा औषधीगुण है (तस्य) उसका (नः) हमें (जीवसे) जीवन के लिये (धेहि) दान कर ।

प्राण के अन्दर ही परमानंदकी शक्ति है। प्राण होनेतक ही किसीके साथ प्रेमव्यवहार होता है तथा प्राणके अन्दर दिव्य औषधिगुण है, प्राण ही बडा भारी "दिव्य वैद्य" है, यह शरीर में रहता हुआ सब रोगोंको दूर करता है। जिस समय यह चला जाता है, उस समय वैद्योंकी कोई औषधी कार्य नहीं कर सकती।

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥

अ० ११।४ (६)

प्राण (प्रजाः) प्रजाओंको (अनुवस्ते) अनुकूलता रहने तक ही ढंक लेता है, जिस प्रकार पिता प्रिय पुत्रको वस्त्रादि देता है। प्राण ही सब का ईश्वर है, जो कुछ (प्राणति) श्वास लेता है और जो (न) नहीं श्वास लेता।

जिस प्रकार प्रिय पुत्रको ही पिता अन्नवस्त्र देता है, उसी प्रकार अनुकूल व्यवहार करनेवाले मनुष्यको ही प्राण दीर्घ जीवन देता है। यह प्राण स्थावर जंगम की सुस्थिति का हेतु है।

पाठ ९

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥११॥
अ० ११।४(६)

प्राण ही मृत्यु है और प्राणही (तक्मा) जीवन की शक्ति है। इस लिये सब (देवाः) देव अर्थात् इन्द्रियादिक प्राणकी ही उपासना करते हैं। सत्यवादी मनुष्य को प्राण ही उत्तम लोक में (आदधत्) स्थापन करता है।

प्राण जानेसे मृत्यु और प्राण रहने तक जीवन होता है। इस लिये संपूर्ण इंद्रियगण प्राण के आधीन हैं, तथा पृथिव्यादि देवताएं भी प्राणके आधीन हैं। सत्य भाषणादि सत्यनिष्ठा के कारण मनुष्य में जो आत्मिक बल बढता है, वह प्राण के कारण ही है। इस लिये हरएक को प्राणायाम द्वारा प्राण की उपासना करनी चाहिये।

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥१२॥
अ० ११।४। (६)

प्राण ही (वि-राज्) विशेष तेजस्वी है, प्राण ही (देष्ट्री) प्रेरक है, प्राण ही सूर्य और चन्द्रमा है; प्राणको ही प्रजापति कहते हैं, इस लिये (सर्वे) सब (प्राणं उपासते) प्राणकी उपासना करते हैं।

पृथिवी सूर्यचन्द्रादि देवताओं में भी प्राण की शक्ति है, यह देखकर प्राणका महत्त्व जानना चाहिये ॥

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥१४॥
अ० ११।४ (६)

(पुरुषः) मनुष्य (गर्भे अन्तरा) गर्भ के अन्दर (प्राणति) श्वास लेता है और (अपानति) उच्छ्वास छोडता है। हे प्राण ! जब तू (जिन्वसि) प्रेरणा अनुमोदन देता है (अथ) तब ही (सः) वह (पुनः जायते) फिर उत्पन्न होता है।

गर्भ के अंदर भी यह प्राणी जीवन लेता है, अर्थात् इसको गर्भ में भी प्राण मिलता है, और इससे अपान दूर होता है।

[सूचना-कई लोग समझते हैं, कि वेदमें पुनर्जन्मकी कल्पना नहीं है। इस मंत्रमें 'स पुनः जायते" अर्थात् वह पुनर्जन्म लेता है, ये शब्द पुनर्जन्म की स्पष्ट कल्पना बता रहे हैं। इन शब्दों को देखनेसे उक्त शंका रह नहीं सकती।]

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१५॥
अ० ११।४(६)

प्राण को मातरि-श्वा (आहुः) कहते हैं, (वातः) वायुको ही प्राण कहा जाता है। भूत, (भव्यं) भविष्य, और वर्तमान, सब कुछ प्राण में ही (प्रतिष्ठितम्) रहता है।

" मातरि-श्वा " शब्द के दो अर्थ हैं, (१) आकाश में व्याप्त और (२) माता के अन्दर गर्भ में रहनेवाला। पूर्व मंत्रमें कहा है, कि "प्राण की प्रेरणासे पुरुष पुनर्जन्म लेता है।" गर्भ में जो बालक रहता है, उसको जन्म लेने की प्रेरणा करनेवाला प्राण है। इसलिये प्राण को भी वहां ही गर्भ में रहना आवश्यक ही है। विश्वव्यापक प्राण आकाश में व्याप्त है, यह बात स्पष्ट ही है। प्राण विश्वव्यापक होनेसे ही उसके आधारसे भूत, भविष्य और वर्तमान की सब वस्तुएं रहती हैं॥

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥१६॥

अ० ११।४(६)

हे प्राण! (यदा) जबतक तू (जिन्वसि) प्रेरणा करता है, तब तक आथर्वणी, आंगिरसी, दैवी (उत) और (मनुष्यजाः) मनुष्यकृत (ओषधयः) औषधियां (प्रजायन्ते) फल देती हैं।

इस मंत्रमें चार चिकित्साओं का वर्णन है— (१) आथर्वणी चिकित्सा वह होती है, कि जो योगबल से होती है। " थर्व " नाम मनकी चंचलता का है, " अ-थर्व " नाम चित्तकी स्थिरता का है। योगद्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध करके मनःस्थैर्यसे जो बल प्राप्त होता है, उस मानसिक बलसे जो चिकित्सा होती है, वह आथर्वणी चिकित्सा होती है। (२) आंगिरसी चिकित्सा- शरीरके अंगोंमें जो जीवन रस होता है, उसको " अंगरस " कहते हैं। मनद्वारा उसको प्रवृत्त करके आरोग्य संपादन करनेकी चिकित्साका यह नाम है। (३) दैवी चिकित्सा-जल, वायु, सूर्य-किरण, विद्युत् आदि दैवी शक्तियों द्वारा जो चिकित्सा होती है, वह दैवी चिकित्सा है। (४) मनुष्यज चिकित्सा वह है, कि जो वैद्य औषधादि प्रयोगसे कर रहे हैं।

ये चार चिकित्साएं वेदमें हैं और उनका वर्णन वेदमें अनेक स्थानों में है। किसी भी चिकित्सासे उस समय लाभ होता है, जिस समय प्राण शरीरमें रहता है। प्राण शरीर छोडने लगेगा, तो कोई चिकित्सा कार्य नहीं करती। इतना प्राणका महत्त्व है।

पाठ १०

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥१७॥
अ. ११।४(६)

जब प्राण (वर्षेण) वृष्टिसे इस बडी पृथ्वीपर (अभि अवर्षीत्) जल सिंचन करता है। तब औषधियां (प्रजायन्ते) उत्पन्न होती हैं, (अथो) और (याः काः च) जो कोई (वीरुधः) जडी बूटी हैं, वे भी उत्पन्न होती हैं।

वृष्टिद्वारा प्राण प्राप्त करनेसे औषधि वनस्पतियों की वृद्धि होती है।

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिंल्लोक उत्तमे ॥१८॥
अ. ११।४(६)

हे प्राण! (यः ते इदं वेद) जो तेरे इस महत्त्व को जानता है, और (यस्मिन्) जिस में तू (प्रतिष्ठितः असि) दृढ ठहरा है, (तस्मै) उसके लिये (उत्तमे लोके) उत्तम लोकमें (सर्वे) सब (बलिं हरान्) भेंट लावें।

प्राणका महत्त्व जो मनुष्य जानता है,और जिसमें प्राणायामादि अभ्यासद्वारा प्राण स्थिर हुआ है, उसकी योग्यता इतनी होती